नं-२४२

ॐ

प्रभंजन-चरित।

(कथा)

लेखक—

घनश्यामदास जैन।

"जैनविजय" प्रेस—सूरत.

शुद्धाशुद्ध-पत्र ।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
वर्द्धमान	वर्द्धन	१	१०
कामदेव	कामदेवकी	१६	७
कहाँ	कामदेव कहाँ	१६	७
जावराय	लावण्य	१९	१५
बनवावें	बनवा देवें	२०	३
कम्भ-क्रीड़ा	काम-क्रीड़ा	२४	६
दोनों और पुत्रको	दोनों जार और पुत्रको	२४	७
उसका	उनका	२६	२१
सबुद्धे !	सद्बुद्धे!	२७	१५
प्रयत्न	प्रयत्नशील	३२	१९
मान	पान	३९	१०
इस पंचमीव्रत	पर इस पंचमीव्रत	४०	१
पूर्व भवमें	पूर्व भवके	४०	११

॥ ओं नमः सिद्धेभ्यः ॥

प्रभंजन-चरित ।

(संस्कृतका हिन्दी रूपान्तर ।)

लेखक—

महरौनी(झाँसी)निवासी पं० घनश्यामदास जैन, न्यायतीर्थ,

प्रधानाध्यापक,

दा०रा०सेठ स्व०हु०दि०जैनमहाविद्यालय—इन्दौर ।

प्रकाशक—

मैनेजर-जैनग्रन्थ कार्यालय, ललितपुर (झाँसी)

प्रथमावृत्ति } वीरनि०सं० २४४२ सन् १९१६ { मूल्य ।)

मुद्रक–

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

" जैन विजय " प्रिन्टींग प्रेस,

ठि० खपाटीया चकला, लक्ष्मीनारायणकी वाड़ी–सूरत।

प्रकाशक–

बंशीधर जैन मास्टर,

मैनेजर–जैनग्रन्थकार्यालय–ललितपुर (झाँसी)।

भूमिका ।

प्रभंजन चरित है तो छोटासा ग्रन्थ पर रोचक और शिक्षाप्रद बहुत है। इससे वैराग्यकी शिक्षा मिलती है। स्त्रियोंके गुप्त रहस्यका पार्ट मालूम होता है। पुण्य और पापका फल ज्ञात होता है। पिता पुत्रका स्नेह जाना जाता है। पूर्वभवमें किए हुए वैरका फल मालूम होता है। व्रतका महत्व जाना जाता है। यह ग्रन्थ कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है किन्तु यशोधर चरितकी पीठिका-मेंसे है। यशोधर-चरित किसका रचा हुआ है यह बात हमें कहींसे मालूम नही हुई। पर इतना मालूम हुआ है कि यह ग्रन्थ प्रभंजन मुनिके किसी शिष्यने बनाया है। क्योंकि इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें "प्रभंजनगुरोश्चरितं वक्ष्ये" ऐसी प्रतिज्ञा पाई जाती है। प्रभंजन मुनिके गुरुका नाम श्रीवर्द्धन था। यदि श्रीवर्द्धन, जय, मेरु, पाल आदि इस ग्रन्थमें जिन२ मुनियोंका उल्लेख किया गया है उनमेंसे किसी भी एक मुनिके रचे हुए किसी एक ग्रन्थका पता लग जाय, तो आशा है कि इस ग्रन्थके रचयिता और उनके समयका भी पता लग जायगा। आज कल लोगोंकी रुचि जितनी कथाग्रन्थ पढ़नेकी तरफ है उतनी और २ विषयके ग्रन्थोंके

पढ़नेकी तरफ नहीं है। यह देखकर हमने लोगोंकी रुचिके अनुसार ही इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित किया है; और हमें आशा है कि यद्यपि इस पुस्तककी हिन्दी बहुत अच्छी या यों कहिए कि पाठकोंकी रुचिके माफक नहीं है पर इसकी कथा बहुत रोचक है इसलिए हमारे पाठक इसे एकवार अवश्य पढ़ेंगे और हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे।

भादौ वदी २
सं० १९७३

घनश्यामदास जैन.

॥ ओं नमः सिद्धेभ्यः ॥

प्रभंजन-चरित।

(संस्कृतका हिन्दी रूपान्तर।)

पहिला सर्ग।

घातिकर्म-रूप-बादलोंके उड़ानेको प्रभंजन (वायु) के समान जो श्री वर्द्धमान उनको नमस्कार कर मैं अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभंजन गुरुके चरितको कहता हूँ।

जम्बूद्वीपके मण्डनरूप भरतक्षेत्रमें पूर्वदेश नामक देश है। इस देशमें तिलकके समान पवित्र पुण्यपुर नगर है। पुण्यपुरके राजा पूर्णभद्र थे। इनका यश पूरे चाँदके समान निर्मल और दिगन्तव्यापी था। पूर्णभद्रकी रानीका नाम भामा और पुत्रका नाम भानु था। एक समय प्रमद नामक वनपाल राजाके पास पहुँचा और सब ऋतु-ओंके फलफूल उनकी भेंट देकर बोला—"देवोंके देव! उद्यानमें आज बहुतसे मुनिजनोंके साथ २ श्रीवर्द्धमान मुनीश्वर पधारे हैं। देवोंके समुदाय आ-आकर उनकी वन्दना और स्तुति करते हैं।" वनपालके मुखसे यह शुभ समाचार सुनकर राजाने उसे बहुत धन दिया और आप स्वयं एक मनोहर हाथीपर सवार हो नगरसे बाहर निकले। जब उद्यान पास आ गया तब हाथीसे उतर इधर उधर ध्यानारूढ़ मुनियोंको देखते भालते वनके भीतरको गये। वहाँ

किसी प्रदेशमें बैठे हुए एक मुनिको देखा। इनका नाम प्रभंजन था। प्रभंजनका शरीर तपसे बहुत कृश हो रहा था, तो भी कल्लोल रहित समुद्रकी नाईं हलन चलन क्रियासे रहित था; दीप्त, तप्त और महाघोर तपके तेजसे तेजवाला था। इनका मन, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहसे बिल्कुल अलिप्त था। ऐसे प्रभंजनको देखकर पूर्णभद्र महाराज बहुत सन्तुष्ट हुए। सच है कि भव्यजीवोंको मुनीश्वरोंके दर्शनमात्रसे ही हर्ष होता है फिर यदि उनके साथ कोई बन्धुभाव हो तब तो कहना ही क्या है? राजा उन मुनिको नमस्कार कर आगे गये। वहाँ एक अशोक वृक्षके नीचे बैठे हुये श्रीवर्द्धन मुनिको देखा और उन्हें नमस्कार किया।

उनसे सात तत्त्वोंका निर्दोष श्रद्धान कर दो प्रकारके धर्मका श्रवण किया। बादमें प्रभंजन मुनिके विषयमें पूछा कि भगवन्! इनका नाम क्या है? इनके तपका कारण क्या है? और इनके ऊपर मेरे हृदयमें जो भारी स्नेह हो रहा है इसका कारण क्या है?

राजाके इन प्रश्नोंको सुन, मुनिराजने उत्तर दिया कि इन्होंने काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंका प्रभंजन (विनाश) कर डाला है, इस लिये इनको प्रभंजन कहते हैं। अब आगे क्रमसे मैं इनके तपका कारण बताता हूँ तुम सावधान हो सुनो।

कथाका प्रारम्भ—जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें शुंभ देश है। इस देशमें भंभापुर नगर है। इस नगरकी खाईपर हमेशा हंस कल्लोलें किया करते हैं, और खाईके मध्यभागकी शोभा देखनेको उत्सुक रहते हैं। भंभापुरका कोट अपने ऊँचे २ दरवाजोंसे सुशोभित है। इस नगरमें बड़े २ विशाल जैन मन्दिरोंकी कई एक कतारे—पंक्तियाँ बनी हुई हैं जो

अपनी ध्वजाओंसे, बगिओंसे, वापिकाओंसे, और छोटी २ तलाइयोंसे ऐसी मालूम होतीं हैं मानों ये सब अकृत्रिम ही हैं—इनको किसीने बनाया ही नहीं । यहाँके महेलोंकी सतरें तो ऐसीं मालूम होतीं हैं मानों ये रत्नत्रयको धारण करनेवालीं जगत द्वारा मान्या, मनोहारिणी और शुद्धमानसा महारानियें ही हैं; क्योंकि इनमें भी तो तीन प्रकारके (हरे पीले लाल) रत्न लगे हुये हैं । ये भी तो जगत कर मान्या तथा जगतके मनको हरनेवालीं हैं, और इनमें भी छोटे २ मानस (तालाव) बने हुये हैं । इन्हीं अपने गुणोंसे ये (महलोंकी पंक्तियाँ) अपने इन गुणोंवाले निवासियोंकी बराबरी करती हैं । इस नगरके महलोंमें जड़े हुये रत्नोंकी कान्तिके मारे यहाँके लोगोंको रात-दिनका भेद ही नहीं जान पड़ता । इस लिये वे अपनी इच्छासे सूरजको चाँद और चाँदको सूरज कह दिया करते हैं । यहाँके राजा देवसेन थे । इनका यशरूपी धन पूर्ण चाँदकी नाईं निर्मल था । देवसेन नीतिके अच्छे ज्ञाता थे, इसी लिये इनकी प्रजा हमेशा अमन चैनसे रहा करती थी । इनकी महारानीका नाम जयावती था । जयावती कामकी रतिके समतुल्य थी, सती और व्रतनिष्ठा थी, इसके विषयमें और अधिक क्या कहें, यह इन्द्रकी इन्द्रानीसे किसी बातमें भी कम न थी । देवसेन और जयावतीके दो पुत्ररत्न थे । एक **प्रवरसेन** दूसरा **प्रभंजन** । ये दोनों कुमार अतीव रूपशाली थे । इनका रूप ताये हुये सोनेके समान था । सज्जनोंमें प्रवर प्रवरसेनका पाणिग्रहण (विवाह) तो बसुंधराके साथ हुआ था और प्रभंजनका सर्वगुणसम्पन्ना पृथिवीके साथ । वसुंधराने एक पुत्रको जन्म दिया जो बहुत ऋजु—सीधासाधा

था। इस लिये उसके पिता प्रवरसेनने उसका ऋजु नाम रक्खा । एवं पृथिवीके भी एक पुत्र पैदा हुआ । वह भी बहुत सरल—सीधे चाल चलनका था । इसलिये उसके पिता प्रभंजनने उसका सरल नाम रक्खा। कुछ कालमें जब महाराज देवसेन विषयभोगोंसे विरक्त हो गये तब उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और प्रवरसेनको वेणातट-पुरका तथा प्रभंजनको भंभापुरका राजा बना दिया । बाद देवसेन वनको चले गये और वहाँ मुनिगुप्त गुरुसे दीक्षा ले ली । मुनिगुप्तके पास उन्होंने घोर तप किया और आयुके अन्तमें मरण कर नवमें शुक्र स्वर्गमें देव पद पाया । एक समय प्रवरसेनके शत्रुने जब प्रवरसेनको बहुत कष्ट पहुँचाया; इससे तमाम भूतलको भी कष्ट हुआ । तब प्रवरसेनने यह सोचकर कि " निःसहाय पुरुषोंकी अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती " अपने छोटे भाई प्रभंजनको एक पत्र लिख भेजा और आप शत्रुके जीतनेको शत्रुकी ओर चल पड़े । प्रभंजन भी अपने बड़े भाईका पत्र पाते ही उनकी सहायताको बहुतसे प्रबल सामन्तोंकी सेनाको साथ लेकर संग्राम-स्थलकी ओर चल पड़े । कुछ समयमें संग्राम-भूमिमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने शत्रुके साथ खूब घमासान युद्ध किया और थोड़ी ही देरमें शत्रुको उसके छोटे भाई सहित बाँध लिया और ले जाकर दोनों शत्रुओंको प्रवरसेनके सामने खड़ा कर दिया । उन दोनोंने प्रवरसेनको नमस्कार किया। प्रवरसेनने उन रिपुकाल और महाकालको नमते हुए देख-कर उनके ऊपर जो क्रोधभाव था उसे बिल्कुल छोड़ दिया । सच है—सज्जनोंका क्रोध जबतक शत्रु नम्र न हो तभीतक रहता है। बाद उन दोनोंको भी छोड़ दिया। वे भी अपने स्वामी प्रवरसेनकी

आज्ञाको स्वीकार कर चले गये। शत्रुको वशमें कर प्रवरसेन अपने छोटे भाई सहित घरको लौट आये और वहाँ सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

एक समय प्रभंजन राजाकी रानी पृथिवीदेवीकी दृष्टि कुमति मंत्रीके ऊपर पड़ी। उसको देखकर रानीकी कामाग्नि जल उठी। पृथिवीने कुमतिको बुलाया और उससे अपने मनका सब हाल कह दिया। कुमतिने भी उसके कहनेको मान लिया और वह उसके साथ कामभोग भोगता हुआ सुखसे रहने लगा। जब रानीने सुनाकि प्रभंजन महाराज घर आनेवाले हैं तब उस पापिनीने रातके समय कुमतिसे कहा—तुम सरलको मार डालो, क्योंकि यह हम लोगोंके मनो-रथकी सिद्धिमें बाधक हो रहा है, तथा बहुतसा धन भी साथ लेकर यहाँसे हम तुम दोनों कहीं दूसरी जगह चलें। कुमतिने रानीका कहना सब मान लिया। एक दिन रानी सरलको देखकर जब रोने लग गई तब सरल—हृदय-सरलने पूँछा—माता! तुम रोती क्यों हो? रानीने उत्तरमें उससे अपना सब वृत्त जैसाका तैसा कह दिया। सुनते ही सरल एक शिल्पीके यहाँ गया और उससे अपने सरीखा एक पूतला बनवा लाया तथा माताके कृत्योंको देखनेकी इच्छासे उसको अपनी शय्यापर लिटा आया। रातके समय माता आई। उसने उस पूतलेके खण्ड २ कर दिये, तथा यह समझ कर कि पुत्र तो मर गया है अब और कोई विघ्न नहीं है, उसने कुमतिको बुलाया और उसे वह साथ लेकर घरसे बाहर निकल गई। थोड़े ही समयमें वे दोनों उज्जैनी पहुँचे और वहाँ एक मकान लेकर सुखसे रहने लगे। इधर सरल भी अपनी माताकी चेष्टा देखकर उदास हो

गया था; इस लिये अपने एक मित्रकी सलाहसे वह देशाटन करनेको चल पड़ा, और बहुतसे देश, नदी, पर्वत और वनोंमें घूमकर विशालापुरी (उज्जैनी) में आ गया। वहाँ किसी उद्यानमें स्नान आदि नित्य क्रियाओंसे निवट, कुछ फलोंको खाकर तथा जल पीकर एक वृक्षके नीचे थकावट दूर करनेको सो गया। दैवयोगसे उसी समय विशालापुरीके श्रीपाल महाराजका देवलोक हो गया था। उनके कोई सन्तान न थी। मंत्री पुरोहित आदिने बहुत खोज की; पर उन्हें जब कोई पात्र न मिला तब उन्होंने यह निश्चय किया कि राजहाथी छोड़ा जावे। वह जिसे पकड़ ले, वही पुरुष राजा बना दिया जावे। सबकी सम्मतिसे कुम्भस्थलपर फेरनेसे चंचल है सुंडा जिसकी ऐसा नाना भूषणोंसे विभूषित राजहाथी छोड़ दिया गया। हाथी जब सारे नगरमें घूम चुका तब उसी उद्यानमें आया जहाँ सरलकुमार सो रहे थे। उसने आकर सरलकुमारको अभिषिक्त करके ग्रहण कर लिया। उस समय मंत्री आदि सब लोगोंने बड़े हर्षके साथ कुमारको हाथीपर बैठाया और जयध्वनिके साथ नगरमें ले आये। वहाँ कुमारको छत्र, चमर आदि विभूतिसे विभूषित कर राजगादीपर बैठा दिया। ग्रन्थकार कहते हैं कि किसीका राज्य छूट भी जाय, पर यदि उसके पुण्यका जोर हो तो उसे दूसरा राज्य मिल जाता है। इस लिये भव्यजीवोंको चाहिये कि वे जैनमार्गके अनुयायी हो पूजा, व्रत, नियम आदि स्वभावोंसे पुण्यका उपार्जन करें। इस प्रकार प्रभंजन गुरुके चरितमें यशोधरचरितकी पीठिकाकी रचनामें सरलकुमारको विशालापुरीका राज्य मिलनेका प्रतिपादक पहिला सर्ग पूर्ण हुआ।

दूसरा सर्ग ।

जब कालको दमन करनेवाले प्रभंजन महाराज, अपने भाईको सब प्रकारका सुखी कर अपनी राजधानीमें आये तब वहाँ उन्होंने रानीका सब वृत्त सुना और देखा । वे बहुत दुःखी हुए और सोचने लगे कि इस आत्माको दूसरोंकी संगतिसे कौन २ से दुःख नहीं भोगने पड़ते अर्थात् यह सभी दुःखोंको भोगता है । स्त्रियाँ संसारका कारण हैं, अनर्थोंकी जड़ हैं, दयाकी दुश्मन हैं, एवं लज्जा और अभिमानसे दूर रहनेवालीं हैं । ये अपनी इन्द्रियों और अपने मनको वशमें नहीं कर सकतीं, और पुँश्चली (व्यभिचारिणी) होतीं हैं । जब ये स्वार्थसे अन्धी हो जातीं हैं तब विना प्रयोजन ही भाई, जमाई, पुत्र, पौत्र, पति, गुरु किसीके भी मारनेको नहीं हिजकतीं हैं । सौ बातकी एक बात तो यह है कि संसारमें जीवोंको जितना कुछ दुःख होता है वह सब इन्हींके कारण होता है ।

इतना सोच विचर कर प्रभंजनने अपने बड़े भाईके पुत्रको अपना राज्यभार सौंप दिया और आप घरसे बाहर चले गये। हा ! पुत्र तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये, वहाँ तुम जीते जागते हो अथवा कालके दावमें पड़ गये हो ! इस प्रकार बादमें विलाप करते हुए वे पृथिवीतलपर विहार करने लगे । वे सोचने लगे कि मैंने अपने पहले भवमें किसीके पुत्रका वियोग किया होगा उसीका फल ऐसा दारुण दुःख मिला है जो सहा नहीं जाता और लाँघा भी नहीं जाता । अब जबतक मुझे

पुत्रका समागम न मिलेगा तबतक चाहे कोई मेरे प्राणोंको हर-नेवाला ही शत्रु क्यों न हो, किसीपर भी वार न करूँगा; अब तो मैं शान्तिसे रहूँगा। इस प्रकार अंग, बंग, कलिंग आदि बहुतसे देशोंमें भ्रमण कर वे कुछ समय बाद उसी विशालापुरी(उज्जैनी)में आये जहाँ सरल नामक उन्हींका पुत्र राजा था। वहाँ सिप्रा नदीके किनारे उन्होंने अपने वस्त्र उतारकर रख दिये और मार्गकी थकावट दूर करनेको स्नान करनेके लिए वे नदीमें उतरते ही थे कि इतनेमें काकतालीय न्यायसे पृथिवी भी जलक्रीड़ाके लिये उसी जगह आ गई। उसने प्रभंजनको नदीमें उतरते देख दूरसे ही पहिचान लिया और सोचने लगी कि यह प्रभंजन यहाँ भी आ गया है। अब इस समय क्या उपाय करना उचित है? इस प्रकार सोच विचार कर उस कपटाचारिणी पापिनीने प्रभंजनको नष्ट करनेके लिये उनके वस्त्रोंके नीचे अपने आभूषण वगैरह छुपा दिये और रोने चिल्लाने लगी—"हा! मैं लुट गई! हा! मेरे देखते २ ही मेरे आगेसे किसीने अभी २ मेरा हार हर लिया। उसकी दासियोंने भी उसीकी तरह कोलाहल करना शुरू कर दिया। उनके भारी कोलाहलको सुनकर कोटपाल इकट्ठे होकर आ गये और पूँछने लगे कि कहो २ कहाँसे किसने तुम्हारा क्या ले लिया है? कोटपालोंने इधर उधर हारको खोजा: तब उन्होंने प्रभंजनके पास पाया फिर क्या था! उसी वक्त उन अविवेकियोंने प्रभंजनको बाँध लिया और मारनेको ले चले। एक पुरुषने जिसका नाम कलश था इस तरह प्रभंजनको लिये जाते देख कोटपालोंको खूब ही डाटा और वह मिष्टभाषी उसी समय महाराजके पास चला गया। वह महाराजसे

इस तरह निवेदन करने लगा--“ हे दीर्घायुष्क महाराज ! आप कल्प-कालतक जीवें। आपका शौर्य, सत्य, श्रुत, त्याग आदि संसारभरमें उज्वल है। आपका यश पूर्णचन्द्रकी बराबर निर्मल है-दिगन्त, व्यापी है। आप प्रभंजनके वंशरूपी आकाशको सुशोभित करनेके लिये शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान हैं। हे श्रीसरल महाराज! आपकी जय हो!” राजाने हर्षके साथ कहा—भद्र! जो तुम चाहते हो वही निराकुल हो माँगो। कलशने दृढ़ताके साथ कहा—राजन्! मैं यही चाहता हूँ कि आप इस चोरको छोड़ देवें। इस बातपर राजामें और कलशमें बहुत वादविवाद हुआ। अन्तमें राजाने चोरको छोड़नेका हुक्म दे दिया और कहा—जिस चोरको कलश छुड़वा रहा है उस चोरको मेरे सामने ले आओ; देखूँ वह कैसा है। राजाकी आज्ञासे चोर उनके सामने लाया गया। राजाने देखते ही प्रभंजनको और प्रभंजनने राजाको पहिचान लिया। वे दोनों ही एक दूसरेके कण्ठसे लग २ कर खूब ही रोये। तत्पश्चात् सरल महाराज उत्कण्ठित हो पिताको अपने घर ले आये। उस समय सरल महाराजने याचकोंको उनकी इच्छासे ही दान दिया—जिसने जो चीज़ माँगी उसे वही चीज़ दी, केवल प्रभंजन महाराजका अवलोकन किसीको न दिया—इकटकी दृष्टिसे वे स्वयं ही प्रभंजनको देखते रहे। सरल महाराजने उस समय कैदियों पक्षियों, मृगों आदि सभीको छुड़वा दिया और उन्हें उनके बन्धुओंसे मिला दिया। प्रभंजनको छुड़वानेवाले कलशको तो इतनी सम्पत्ति दी कि उसे अपने बराबर ही माला-माल कर लिया, किसी भी बातमें कम न रक्खा। सच है—सज्जनोंका उपकार कल्पवृक्षकी नाईं फलता है।

अब वे दोनों ही पितापुत्र एक दूसरेकी कथा सुनते हुए सुखसे काल बिताने लगे । इसमें संदेह नहीं कि आपत्तिके समय संयोग होना ही सुखका कारण है, फिर यदि वह संयोग पितापुत्रका हो तब तो कहना ही क्या है । एक दिन प्रभंजनने अपने पुत्रसे कहा-- पुत्र ! मैंने तुम्हारे वियोगसे दुःखी हो नगरदेवताको कुछ भेट देना स्वीकार किया था। वह भेट मुझे अब देना चाहिये । इस लिये तुम पहिले देवीके गृहकी सफ़ाई कराओ, पीछे और कुछ होगा । राजाने उसी वक्त वहाँ अपने चतुर २ सिपाहियोंको भेज दिया । वे लोग वहाँ पहुँचे और वापिस आकर कहने लगे कि महाराज ! वहाँ आठ निर्ग्रन्थ यतीश्वर बैठे हुए हैं । वे किसी तरह भी वहाँसे दूसरी जगहको नहीं जाते हैं । यह सुन प्रभंजन बहुत क्रुद्ध हुए और वे स्वयं वहाँ चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने उन आठ यतीश्वरोंको देखा । वे वास्तवमें वहीं बैठे थे । उनके दर्शनमात्रसे प्रभंजनका मन बिल्कुल शान्त हो गया । सच है, मुनीश्वरोंको देखकर सिंह आदि हिंसक जन्तु भी जब शान्त हो जाते हैं तब फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ! उन सबको क्रमसे नमस्कार कर प्रभंजन उनके समीपमें बैठ गये और क्रम २ से उनके नाम और उनके तपका कारण पूछने लगे । तब सबमें प्रमुख, अवधिज्ञानी, एक यतिने उत्तर दिया--राजन् ! मैं क्रमसे तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ तुम सावधान हो सुनो । हम आठोंके नाम, श्रीवर्द्धन[१] जय[२], मेरु[३], शुद्ध[४], अपराजित[५], पाल[६], वज्रायुध[७] और नंद[८] इस प्रकार हैं। हम लोगोंके तपके कारण उपाध्यायी, चूडाली, कपिसंगति, बालहत्या, मंगिका और यशोधर महाराज हैं अर्थात् इनकी कुचेष्टाओंसे

विरक्त हो हम लोगोंने तपका शरण लिया है। इनमेंसे किसके लिए कौन कारण हुआ ? यह बात आगे स्पष्ट हो जायगी ।

अब मैं (श्रीवर्द्धन) अपने तपका कारण सुनाता हूँ। मैंने वलभीपुरमें रहकर सोमश्रीका चरित्र तो स्वयं देखा है। पटनामें सुलक्षणाका चरित सुना है । प्रयागमें दूतीका चरित अनुमानसे जाना है तथा ब्रह्मकुवरमें सुभद्राके चरितका स्वयं अनुभव किया है। सार यह है कि इन चारोंने ही बड़े २ दुर्घट कार्योंको भी सहसा करके दिखाया है।

पटना नगरके राजा नंदिवर्द्धन थे। उनकी रानीका नाम सुनंदा और पुत्रका नाम श्रीवर्द्धन था। श्रीवर्द्धन बड़े तीव्रबुद्धि थे। इस लिये इन्होंने थोड़े समयमें सत्रह लिपियाँ सीख लीं थीं; पर वे म्लेच्छ भाषाकी लिपिको नहीं जानते थे। एक समय यवनेश (म्लेच्छराजा) ने नंदिवर्द्धन महाराजके पास एक पत्र भेजा। उसकी लिपि म्लेच्छभाषाकी थी। लेखवाह—पत्र लानेवालेने उस पत्रको लाकर नंदिवर्द्धन महाराजके सामने रख दिया। नंदिवर्द्धन श्रीवर्द्धन आदि सभीने उस पत्रको पढ़नेका प्रयत्न किया; पर वह किसीसे भी न पढ़ा गया। उस समय पूर्व शुभ कर्मके उदयसे श्रीवर्द्धनके बहुत विरक्त भाव हुये। वे घरसे निकल वलभीपुर पहुँचे। वहाँ गर्गनामधारी एक अध्यापकके यहाँ रहने लगे। जब पाँच दिन बीत गये तब उन्होंने उपाध्यायसे कहा—मैं आपके प्रसादसे यवन लिपिको जानना चाहता हूँ। उस द्वीजाग्रणी गर्गने श्रीवर्द्धनको पात्र समझकर उनका कहना स्वीकार कर लिया। श्रीवर्द्धन भी गुरुकी विनय करते हुए लिपि सीखनेकी

इच्छासे रहने लगे। एक दिन रातके समय उन गर्ग महाराजकी सोमश्री स्त्री कहींको जा रही थी। उसको कहीं जाती देख गर्गने कहा—बच्चेको छोड़कर तू कहाँ जाती है? उत्तरमें उसने कहा-यदि आप आज्ञा दें तो नृत्य देख आऊँ। विप्रने कहा—तुम्हीं जानो जैसा ठीक हो। वह हर्षित हो नृत्य देखनेको चली गई। शिष्य (श्रीवर्द्धन) भी उसके पीछे २ हो लिया और कहींपर छिपकर बैठ गया। कुछ दूर एक यक्षका मठ था। वहाँ सोमश्री गई और बहुत देरतक अपने जारके साथ क्रीड़ा करती रही। बाद कहने लगी कि आप मेरे घर चलकर विश्राम करिए। जारने कहा—यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है; क्योंकि यहाँ तो हम तुम क्रीड़ा कर रहे हैं। इस लिये यह स्थान तो रमणीक है, पर तुम्हारे घर तो कुछ भी न कर सकेंगे। तो फिर वह रम्य कैसे हो सकता है। तात्पर्य यह है कि वहाँ जाना ठीक नहीं; क्योंकि वहाँ अपना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। बाद सोमश्रीने संकेतभरे शब्दोंमें कहा—मेरी पालिका (सुलक्षणा) घरसे चली गई थी और बहुत वर्षोंतक बाहर रही भी थी; बाद अपने जार और पुत्र सहित किसी तरकीबसे अपने ही घरमें रहने लगी थी। इस सब बात-चीतके बाद वे दोनों वहाँसे निकलकर घरको चले आये, तथा वह शिष्य (श्रीवर्द्धन) भी किसी दूसरे मार्गद्वारा गुरु गर्गके घर आ पहुँचा। सोमश्रीके संकेतके अनुसार वह जार गर्ग उपाध्यायके घर आया और उनसे कहने लगा—विप्र! मैं अपनी स्त्री सहित आपके यहाँ निवास करना चाहता हूँ; मैं एक पथिक हूँ। अब इस समय रातमें कैसे और कहाँ जाऊँ? दयालु गर्गने उन्हें अपने घरपर रहनेकी आज्ञा

दे दी। सोमश्री और वह जार दोनों गर्गके घर ठहर गये। सोमश्रीने यहाँ भी यक्षके मठकी तरह ही दुर्विलास कर इस स्थानको भी उसी तरह रम्य कर दिखाया। इतनेमें सोमश्रीका पुत्र रोया और गर्गकी ओर उसके स्तन पीनेके लिये सटपटाया—झपटा। तब सोमश्रीने अपने जारसे कहा—तुम किसी तरह पुत्रको माँगकर मेरे पास ले आओ। जारने गर्गसे पूछा—विप्रराज! पुत्र क्यों रोता है? गर्गने उत्तरमें कहा-इसकी माता नृत्य देखनेको गई है; इस कारण यह भूखा-प्यासा हो रो रहा है। विटने कहा—यदि ऐसा है तो आप बच्चेको मुझे देवें। मैं अपनी स्त्रीका दूध पिलाकर अभी वापिस लिये आता हूँ। मेरी स्त्रीका बच्चा अभी कुछ समय हुआ जब मर गया था अतएव उसके स्तनोंसे दूध निकलता है। अनजान गर्गने पथिकके हाथमें बच्चेको दे दिया। पथिक भी बच्चेको दूध पिलाकर वापिस लौटा गया। इस प्रकार करते २ उस दुष्टा सोमश्रीने जारके साथ दुर्विलास करते हुए रात पूरी कर दी। वह सबेरा होते ही उठी और घरसे बाहर कुछ दूर जाकर वापिस आगई और पतिदेवको क्रुद्ध हुआ देख उनके पैरोंपर गिरकर बोली—स्वामिन्! आप क्रोध मत करो; मुझे हठ करके सखीने ज़बरंदस्ती ठहरा लिया था। मैंने सुना है—अपने घर आज रातको कोई पथिक ठहरा था; उसकी स्त्रीके दूधको पी-पीकर बालक खूब सन्तुष्ट रहा है। यह बात सच्ची है या झूठी है? गर्गने कहा-यह तो सत्य है। गर्गका ऐसा उत्तर सुन सोमश्री सन्तुष्ट हुईसी बैठ गई। सच है--वंचक (ठग) लोग दूसरेके दुःख बिल्कुल नहीं जानते हैं। इस दुष्टा उपाध्यायीके ऐसे स्वभावको जानकर रातमें शिष्यके बहुत विरक्त भाव हो गये। वह आश्चर्यके साथ सोचने लगा-

नवग्रह, समुद्रका जल, और बालुका ढेर इनका परिमाण तो किसी तरहसे जाना भी जा सकता है, पर स्त्रीका मन किसीसे भी नहीं जाना जा सकता है। अन्तमें शिष्यने सोचा कि बहुत विकल्पजाल उठानेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इन सब बातोंको कल उपाध्यायीहीसे पूछ लूँगा। श्रीवर्द्धन मुनिराजने प्रभंजनसे कहा कि दुष्ट चेष्टाको करनेवालीं, पापकी खानि स्त्रियोंका जो हाल मैंने स्वयं देखा है वह तो आपसे कह दिया। अब कुछ सुना हुआ हाल कहता हूँ उसको भी आप सावधान हो सुनो। इस प्रकार प्रभंजन गुरुके चरितमें यशोधरचरितकी पीठिकाकी रचनामें दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

तीसरा सर्ग।

एक दिन निर्लज्जा सोमश्रीने कुछ संकेतोंमें उस छात्र (श्रीवर्द्धन) से कहा—भद्र तुम जबतक मेरे मनोरथको पूरा न करोगे तबतक तुम्हारा लिपि सीखनेका मनोरथ कैसे सिद्ध हो सकता है? कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता हैं। सोमश्रीकी चेष्टासे उसके मनोरथको जानकर शिष्यने उत्तर दिया कि तुम्हारा भी मनोरथ इस जगह कैसे फलित हो सकता है? सोमश्रीने कहा कि मेरी पालिका (सुलक्षणा)ने जैसी विधि की उसी तरह अपन भी दूसरी जगह चलें। शिष्यने पूछा कि शुभे! सुलक्षणाने कैसी विधि की थी सो कहो। श्रीवर्द्धन मुनिने प्रभंजन महाराजसे कहा-आर्यपुत्र! मेरे पूछनेपर जैसी कुछ सुलक्षणाकी की हुई विधि मुझे मेरी उपाध्यायीने बताई थी वह सब मैं कहता हूँ, तुम स्थिर चित्त हो सुनो।

पटना नगरके राजा नंदिवर्द्धन थे। उनकी रानीका नाम सुनन्दा था। नंदिवर्द्धन और सुनन्दाके पुत्रका नाम श्रीवर्द्धन था। इसी नगरमें एक हरिभद्र नामक वैश्य रहते थे। उनकी भार्याका नाम भामिनी था। हरिभद्र और भामिनीके अतीव उत्तम सात पुत्र हुए। उनके नाम श्रीदत्त, जयदत्त, भद्र, गोवर्द्धन, जय, विष्णु, गाम इस प्रकार थे, तथा उनके दो पुत्रीं भी थीं जिनके बालरंडा और सुलक्षणा ये नाम थे। एक दिन सुलक्षणा तालावपर स्नान करनेको गई। वहाँ उसने श्रीधर नामके एक मनोहर विद्यार्थीको देखा। उसको देखते ही सुलक्षणाकी कामाग्नि जल उठी। श्रीधरने भी उसके दृष्टि-विभ्रमसे जब जान लिया कि यह मेरे ऊपर अनुरक्ता हो रही है तब उसने यह श्लोक पढ़ा—

पुण्डरीकविशालाक्षं, रोमराजीतरंगकं।
उरोजचक्रिकं चेदं, भाति योषित्सरोवरं ॥ १ ॥

अर्थात्--यह सरोवर स्त्रीकी नाईं मालूम पड़ता है—शोभित होता है, क्योंकि जिस तरह स्त्रीके विशाल नेत्र होते हैं उसी तरह इसमें भी कमलरूपी विशाल नेत्र हैं, स्त्रीके रोमराजी होती है इसमें तरंगें ही रोमराजी है, स्त्रीके कुच होते हैं इसमें भी चक्रवाकरूपी कुच हैं। तात्पर्य यह है कि यह स्त्रीसे किसी बातमें भी कम नहीं है। इसके उत्तरमें सुलक्षणाने भी यह श्लोक बोला—

एतद्रसस्य योऽभिज्ञो, विलासी विमलाशयः।
त्यागी भवति तस्येदं, स्निग्धयोषित्सरोवरं ॥ १ ॥

अर्थात्—यह योषित् रूपी सुन्दर सरोवर उसी पुरुषका है जो इसके रसका रसिक है—ज्ञाता है, विलासी है, विमलाशय है तथा

अन्य वस्तुओंका त्यागी है । उसके इन वचनोंको सुन, श्रीधरका मन बहुत प्रसन्न हुआ और वह उसके जाने हुए मनको और भी निश्चित जाननेके लिये बोला—

किमतः करणं प्रोक्तं, को निंद्यस्तत्त्ववेदिभिः ।
मनोभवः क्व चेतस्के, कः पीडाकृन्ममाधुना ॥ १ ॥

अर्थात्—इसमें प्रबल कारण क्या माना गया है? तत्त्ववेदी लोग किसकी निंदा करते हैं? (उत्तर—कामदेव) कहाँ उत्पन्न होता है? (उत्तर—कामकी उत्कंठावाले पुरुषके मनमें) इस समय मुझे पीड़ा कौन दे रहा है? (उत्तर—कामदेव) श्रीधरके वचनोंको सुनकर जनप्रिया सुलक्षणाने कहा—

पृच्छत्यवगमं साधो ! कः सदात्र कलिप्रियः ।
किं च प्रजायते ब्रूहि, को ममासून् जिहीर्षति ॥ १ ॥
तथाप्यन्तः शकटं प्राप ह्यस्मत्पीडनो रिपुः ।

अर्थात्—हे साधो ! साधु लोग आगममें क्या पूछते हैं? (उत्तर-पुरुष (आत्मा) संसारके इस कलिकालमें क्या प्यारा है? (उत्तर—कामदेव) मेरे मनमें क्या उत्पन्न हो रहा है और मेरे प्राणोंको कौन हरना चाहता है? (उत्तर—कामदेव)। फिर भी तो वह मुझे पीड़ा देनेवाला मेरा वैरी मेरे मनको प्राप्त हो चुका सो क्या?

इस प्रकार परस्परमें बात-चीत करनेसे अतीव प्रीतिको प्राप्त हुए उन दोनोंका रागरूपी समुद्र उसी तरह वृद्धिको प्राप्त हुआ जिस तरह उजले पाखके चन्द्रमाकी किरणोंसे समुद्र वृद्धिंगत होता है। सुलक्षणाने कहा कि मैं कुछ काल यक्षगृहमें ठहरकर राजमार्ग

(सड़क) से घरको जाऊँगी उस समय तुम मेरा करपल्लव (हाथरूपी पल्लव) पकड़ लेना, और जब पुरवासी लोग इधर उधरसे आ-आकर कोलाहल मचावें तब तुम उनसे कह देना कि यह मेरी प्रिया है। हे प्रिय ! क्या आप ऐसा करनेको तैयार हैं ? सुलक्षणाके रूपपर आसक्त-चित्त श्रीधरने उसका कहना स्वीकार कर लिया। सच है, कामी जनोंको दुःखका भान ही नहीं होता कि आगे हमें क्या दुःख होगा। एक समय सायंकालमें मतवाले हाथीकी नाईं चलनेवाली वह मुग्धा ताँबेका पात्र हाथमें लिये जलसे भीगे हुए कुशोंके द्वारा धरणीतलको सींचती हुई राजमार्गमें होकर जब जा रही थी तब श्रीधर विद्यार्थीने उसके पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया। लोगोंने इधर उधरसे आ-आकर बहुत कोलाहल मचाया और " यह मेरी प्रिया है, इस प्रकार कहनेपर भी उस छात्रको वहाँसे हटा दिया। बाद पहिले संकेतके अनुसार श्रीधर यक्षगृहको चला गया, और वह भी आकुलितमना होती हुई जल्दीसे अपने घरको चली आई। वहाँ उसने अपने पिता आदि सभी बन्धुओंको बुलाया और आंसुओंको बहाते हुए कहा कि हे तात ! आज किसी एक पुरुषने ज़बरदस्ती मेरा हाथ पकड़ लिया है; इस लिये उस पापका प्रायश्चित्त लेनेको मैं अभी जलती हुई आगमें प्रवेश करती हूँ। सुलक्षणाके इन वचनोंको सुनकर पिताने कहा—वत्से ! तुम्हारा कैसा स्वभाव है उसको तो मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। दूसरे लोग मात्सर्यके वश हो जो चाहे कहा करें उससे तुम्हें क्या प्रयोजन है ! तुम स्नानादि क्रियाओंमें संलग्ना रहती हुई मेरे घर रहो। सुलक्षणाने कहा कि अब आप लोग अपने २ बंधुवर्गके साथ अपने २ घरों-

को पधारें। मैं प्रातःकाल इस बातका जो इलाज करूँगी, वह सब मेरी क्रियाहीसे आप लोगोंके आगे आ जायगा वचनोंके द्वारा कहना निष्फल है। इसके बाद पिता आदिक सब लोग तो सुलक्षणाके वचनोंसे दुःखी होते हुए उसके गुणोंका स्मरण करते २ अपने २ घरोंको चले आये, उधर सुलक्षणाकी माताने उसकी अवस्था जानने-की इच्छासे इंदुवापिका नामकी दूतीको उसके पास भेजा। दूती गई और सुलक्षणाके घर पहुँची। वहाँ सुलक्षणाने उसे शराब पिलाकर मतवाला कर दिया और जब वह बिल्कुल वेहोश हो गई तब उसे अपने पलँगपर लिटा दिया तथा अपने आप बहुतसे रत्नोंको इकट्ठा करके जब बाँध-बूँध लिया तब घरमें आग लगा दी और वह तन्वी स्वयं श्रीधरके साथ दशपुर नगरको चली गई। बांधवोंने जब देखा कि सुताने अपने नामके पीछे अपने घरको भी जला डाला है, तब वे आकुलित होते हुए बहुत रोने चिल्लाने लगे और उसके गुणोंका बार २ स्मरण करने लगे। बांधवोंने सुलक्षणाको उद्देश्य करके उसके मरणकी सब क्रियाएँ कीं--उसे जलांजलि दी। बादमें अपने २ घर आकर उसे भूलभाल गये और सुखसे रहने लगे। जब राजा लोगोंने उसके सारे वृत्तान्तको सुना तब वे भी आश्चर्यके समुद्रमें गोते खाने लगे और उसे साधुवाद देने लगे। वे दोनों दशपुर नगरमें पहुँच गये और वहाँ रतिक्रीड़ा करते हुए सुखसागरमें निमग्न होकर रहने लगे। वहाँ बहुत काल पश्चात् उनके कई एक बालबच्चे पैदा हुए। धीरे २ जब सब धन पूरा हो गया तब वह सुलक्षणा पति-पुत्र दोनोंहीको साथ लेकर फिर अपने पिताके घरको आई और वहाँ सुखसे रहने लगी। हे राजेन्द्र! सोमश्री (गर्गकी स्त्री) के इन

वाक्योंको सुनकर मुझे बहुत ही विस्मय हुआ। मैं सोचने लगा—

महामोहोरुनीरस्य, वचनावर्त्तशालिनः ।
रामाचेतोऽबुधेर्मानं, लभन्तेऽद्यापि नो नराः ।

अर्थात्—जिसमें महामोहरूपी भारी–अगाध तो जल भरा हुआ है और चतुराईके वचनरूपी भँवर उठा करते हैं उस स्त्रीके मनरूपी समुद्रकी थाह पुरुषोंने अबतक भी नहीं पाई है।

राजन्! मैंने यहाँतक अपनी सुनी हुई कथाको तो आपसे कह दिया; पर अब मैं अनुमानसे जाने हुए कथानकको कहता हूँ सो तुम सुनो। जब सोमश्री निराश हो गई थी—उसने जान लिया था कि श्रीवर्द्धन मेरे मनोरथको सिद्ध नहीं करेगा, तब उसने मुझे इन्दुवापिका दूतीका यह कथानक सुनाया था।

प्रयाग एक सुन्दर शहर है। इसमें एक उत्तम वैश्य रहते थे। उनका नाम यमुन था, तथा भार्याका नाम गंगश्री था। वह बहुत प्रसिद्ध थी। उसी नगरमें एक विष्णुदत्त वैश्य और थे। एक दिन विष्णुदत्तकी दृष्टि, रूपवती व जावराय श्रीकर युक्ता गंगश्री सुन्दरी-पर पड़ी। इसके रूप लावण्यकी छटाको देखते ही विष्णुदत्तका मन विह्वल पुरुषकी नाईं हो गया। वह अपने घर कमलपत्रोंके विस्तरेपर सोया ही था कि उसके घर इन्दुवापिका नामकी दूती भिक्षाके अर्थ आई और विष्णुदत्तको कामार्त्त देखकर वह अपने आप ही बोल उठी कि मैं वैसे तो सभी शास्त्रोंमें ही कुशल हूँ; पर कामशास्त्रका मुझे पूरा २ अनुभव है। यदि आप कहें तो आपके मनको जिसने चुरा लिया है उसे आज ही आपके पास ले आऊँ। उसके इन वचनोंको सुन विष्णुदत्तने कहा कि मैं तो तुम्हारा किंकर हूँ, तुम

मुझे गंगश्रीसे मिला दो। दूतीने कहा कि तुम गंगश्रीके पति यमुनके पास जाना और उससे कहना कि यह जैसा तुम्हारा वस्त्र है, इसी तरहका एक मुझे भी चाहिए, कृपाकर आप ऐसा ही बनवावें। विष्णुदत्तने ऐसा ही किया और वस्त्रको लाकर दूतीके हाथमें दे दिया। दूती वस्त्रको लेकर गंगश्रीको वशमें करनेकी इच्छासे गई और क्रम २ से सबके घर फूल बाँटती हुई गंगश्रीके घर पहुँची। वहाँ उसकी शय्यापर उस वस्त्रको डालकर चली आई, और विष्णुदत्तसे कहने लगी कि तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हो गया है, अब उत्सुक मत होओ, बहुत जल्दी गंगश्री तुम्हारे वशमें हो जायगी। कुछ कालमें जब यमुन घर आया तब उसने अपनी भार्याकी शय्यापर विष्णुदत्तका वही वस्त्र पड़ा हुआ देखा जो उसने बनवा कर दिया था। वह गंगश्रीपर बहुत रिसिया उठा और उसने उससे पूछा कि खले ! यहाँ विष्णुदत्तका यह वस्त्र कैसे आया है? उसने कहा—मुझे मालूम नहीं। इसपर तो यमुन और भी लाल पीला हुआ और कहने लगा कि यह सब तेरी ही तो करतूत है और तू कहती कि मुझे मालूम नहीं। जा, मेर घरसे अभी चली जा-निकल जा। यहाँ अब तेरा कुछ भी काम नहीं है। वह विचारी साध्वी गंगश्री बहुत आकुलित होकर अपने पिताके घरको चली गई। वहाँ रातके समय वह कुधी इन्दुवापिका पहुँची और उससे कहने लगी—बाले ! तू अनमनी क्यों है? गंगश्रीने अपना सभी वृत्तान्त कह सुनाया। उसके वृत्तान्तको सुनकर दूतीने कहा—यदि तुम उस विष्णुको चाहतीं हो, जो कि भोग भोगनेकी अपेक्षासे इन्द्रके समान है, रूपसे कामदेवके समान है, दानी होनेसे कर्णकी

समता करता है, और निर्भय होनेके कारण अर्जुनके समान है, तो मैं तुम्हारे मनोरथको सिद्ध करनेकी चेष्टा करूँ। गंगश्रीने कहा कि यद्यपि यह अकर्तव्य है तौ भी मैं स्वीकार करती हूँ। यदि तुम मेरे पतिको मेरे मुखरूपी कमलके ऊपर चंचल नेत्रों-वाला कर देनेकी प्रतिज्ञा करो। दूतीने उसके वचनोंको स्वीकार कर लिया और रातके समय उसको विष्णुदत्तके पास पहुँचाकर अपने घरको चली आई। किसी दूसरे दिन इन्दुवापिकाने विष्णुदत्त-से कहा कि तुम गंगश्रीके पतिके सामने मुझसे अपना लारव्य वस्त्र माँगना। विष्णुदत्तने वैसा ही किया—यमुनके सामने दूतीसे अपना लारव्य वस्त्र माँगा। दूतीने कहा कि मुझे याद नहीं है; वह उस समय किसीके घर पड़ा रह गया होगा जब कि मैं सबके घर पुष्प बाँटनेको गई थी। इतनेमें यमुनदत्तने कहा कि भद्रे! तुम्हारा वस्त्र यह है। तुम मेरे घर छोड़ आई थीं, अब ले जाओ। दूतीने वस्त्र ले लिया और वहीं यमुनके सामने ही विष्णु-दत्तको दे दिया। विष्णुदत्तने उसी वक्त बहुतसे वस्त्र वगैरह देकर दूतीका खूब सत्कार किया और गंगश्रीपर आसक्तचित्त वह सुखसे अपने घरमें रहने लग गया। यह सब वृत्त जानकर गंगश्रीके पति यमुनको भारी दुःख हुआ। वे बहुत पछतावा करते हुए अप-नी भार्या गंगश्रीके पास पहुँचे और उसे नमस्कार कर कहने लगे—हे सरल चित्तवाली साध्वि! प्रसन्न होओ। तुम तो सतियोंमें श्रेष्ठा हो, पर मैंने अपने अज्ञानसे यह नहीं जाना और तुम्हें कटुक वचन कहकर दुःख दिया। इसके लिये हे सुलोचने! मेरे ऊपर क्षमा करो। पतिके ऐसे वचन सुनकर माता पिताकी भेजी वह गंगश्री

प्रसन्न होती हुई अपने पतिके साथ घरको आई और सुखरूपी समुद्रमें निमग्न होती हुई तथा अपने पतिके नेत्रकमलको तृप्त करती हुई प्रसन्न चित्तसे रहने लगी। उसके दुराचारको किसीने भी न जान पाया। श्रीवर्द्धन मुनि कहते हैं कि मैंने उसके कहे हुए इस कुचेष्टावाले कथानकको सुन यह निश्चय किया कि जिस तरह इसका कहा हुआ सुलक्षणाका कथानक सुना है उसी तरह यह भी अनुमानसे जाना जाता है--निश्चित होता है कि उसी तरह यह भी हो सकता है। इस अनुमानाख्य कथानकको सुनकर मैंने सोचा—

साहसोर्वीरुहाकीर्णं, भोगभोगिविभीषणं ।
कोपव्यालावलीढं च, स्त्रीमानसमहावनं ।

अर्थात्—स्त्रियोंका मन वनसे भी 'भारी भयानक कानन-जंगल है। जंगल वृक्षोंसे भरा होता है, स्त्रियोंके मनरूपी वनमें साहस रूपी भयङ्कर वृक्ष होते हैं। वन सर्पोंसे भयानक होता है, स्त्रियोंका मनरूपी वन भोगरूपी सर्पोंसे भयानक होता है, फर्क इतना है कि वनमें सर्प डसे तो दवा भी हो सकती है और हकीम भी मिल सकता है, पर भोगरूपी सर्पके काटेकी कोई भी दवाई नहीं और न कोई उसका वैद्य ही है। वन व्यालोंसे भरा होता है, स्त्रियोंका मन-वन क्रोधरूपी व्यालोंसे भरा होता है। ऐसे भारी भयंकर स्त्रियोंके मानसरूपी वनसे--संसारसे--केवल मुनिजन ही भयभीत हुए है; क्योंकि वे धीर होते हैं, जितेन्द्रिय और शान्त होते हैं, उनके मानस ज्ञानरूपी जलसे धोये जानेके कारण स्वच्छ होते हैं। राजन्! मैंने अनुमानाख्य कथानकको

तो आपसे संक्षेपमें कह दिया । अब मैं थोड़ासा कथानक अनुभव किया हुआ कहता हूँ, तुम सावधान हो सुनो ।

इस प्रकार स्त्रीके चरितको देखकर सुनकर और अनुमानसे जानकर मुझे बहुत वैराग्य पैदा हुआ। अतएव उसी समय मैंने जैनेन्द्री दीक्षा ले ली और मैं जिन भगवान्के बताए हुए तपको करने लगा। जब मैं अच्छी तरहसे मुनि धर्मकी क्रियाओंके प्रतिपादक आगमको पढ़कर सब क्रियाओंको खूब ही जान गया, तब मैंने गुरुसे निवेदन किया कि महाराज ! मैं आपकी अनुज्ञासे एकाकी विहार करना चाहता हूँ। गुरुवर्यने स्वीकार कर लिया । मैं भी उनको नमस्कार कर चलता बना—चला आया और कुछ समयमें एक पलाश नामक गाँवमें आया । यह गाँव प्रायः मांसभोजियोंसे भरा हुआ है—उनका ही यहाँ बहुलतासे निवास है । इस गाँवमें एक गुणाग्रणी सोमशर्म नामके ब्राह्मण रहते हैं। उनकी स्त्रीका नाममात्रका नाम सुभद्रा है, सार्थक नहीं। यहाँपर एक सुन्दर शून्य मकानमें हम ठहरे ही थे कि इतनेमें बालक और जारको साथ लिए वहींपर सुभद्रा पुँश्चली भी आगई । मैं एक कोनेमें बैठा २ देख रहा था कि उसने दूध पीते हुए और जोर २से रोते हुए प्रौढ पुत्रको तथा जारको मारडाला उस समय मैंने प्रतिज्ञा की कि मेरे ऊपर उपसर्ग आकर यदि क्रमसे चला जायगा तो मैं सवेरे आहार आदिमें प्रवृत्ति करूँगा, नहीं तो आजन्मको मेरे आहार आदिका त्याग है । जीनेमें, मरणमें, लाभमें, अलाभ—नुकसानमें, संयोगमें, वियोगमें, बन्धुमें, मित्रमें, सुखमें और दुःखमें मेरे हमेशा ही समता भाव हैं। मैंने उस समय जिनोंका, सिद्धोंका, उपाध्याय, आचार्य और साधुओंका जो.

कि संसारमें शरण हैं, उत्तम हैं, मंगलरूप हैं, आदरके साथ निष्काम हो स्मरण किया। मैंने विचारा कि मेरा दर्शनज्ञानस्वरूप एक आत्मा ही शाश्वत है। इसके सिवाय जितने मिलते और विछुड़ते हुए पदार्थ हैं वे सब ही नश्वर हैं--मेरी आत्मासे भिन्न हैं। इस प्रकार धर्म ध्यानमें लीन हुए मुझे सुभद्राने देखा। उसने मुझे कहा कि भव्य! यदि तुम जीना चाहते हो तो मेरे साथ कम्भ-क्रीड़ा करो। इसके वाद उन दोनों और पुत्रको ज़मीनमें डालकर वह मेरे पास आ गई और स्त्रीके कृत्योंको करने लग गई। वह अपने मनचाहा तो मधुर २ बोली, मनमाना मेरे शरीरसे संगम करती रही, हँसती रही, हावभाव आदि करती रही, कटाक्षोंसे देखती रही, तथा अपने केशोंको छुटका २ कर वार २ बाँधती रही और स्तन आदिकोंको प्रगट कर २ दिखाती रही, मेरी अँगुलियोंको तोड़ती रही, अंगोंको ऐंठती रही, जँभाई लेती रही। अधिक क्या कहें इस प्रकार उसने अपनी नाना प्रकारकी विडंबना की, पर जब वह मेरे मनको बिल्कुल न चला सकी तब बहुत लज्जित हुई और शस्त्र लेकर मुझे मारनेको तैयार हुई। उस समय किसी देवताने आकर उसे पकड़ लिया और चित्रकी नाईं स्थिर कर दिया। प्रातःकालके समय " अब उपसर्ग नहीं करना " यह कह कर व्यन्तरीने उसको छोड़ दिया। मानों उसने मेरे अभिप्रायको ही जान लिया हो, और नमस्कार कर चली गई। जब सूर्य उदित हो गया, मार्गमें लोग जाने आने लगे, वह प्राशुक हो गया तब मैं भी उस मकानसे निकल धीरे २ इस पुरीमें आया हूँ।

राजन्! मैंने जो कुछ देखा सुना और अनुमानसे निश्चय किया वही मेरे तपका कारण हुआ है, तथा सुभद्राके संगसे उन

सब बातोंका मुझे खूब अनुभव भी हो गया है सो सब मैंने आपसे कह ही दिया है। इस प्रकार प्रभंजन गुरुके चरितमें यशोधर-चरितकी पीठिकाकी रचनामें तीसरा सर्ग पूरा हुआ।

चौथा सर्ग।

इस प्रकार अपने तपका कारण कहकर श्रीवर्द्धन मुनिराजने जय और मेरुके तपका कारण कहना शुरू किया। भरतक्षेत्रमें कीर्तिपुर नामक नगर है, इस नगरके राजा जितशत्रु थे। उनकी रानीका नाम जयावती था। मंत्रीका नाम जय था, वे द्विज थे। उनकी स्त्रीका नाम जयश्री था, वह पतिकी अनुकूला और प्रिय-भाषिणी थी। जय मंत्री और जयश्रीके सात पुत्र थे, वे सभी ६४ कलाओंमें तथा और २ गुणोंमें कुशल थे, एवं उनके मंदिरा आदि छः पुत्रियाँ भी थीं, वे सभी सरल स्वभाववालीं और मनोरमा थीं। इन सभी पुत्र और पुत्रियोंको विवाहके समय क्रम २ से इन्हींकी माता-डाकिनीने मार खाया था, केवल एक मेरु बचा था। वह अन्तिम पुत्र मेरुके समान निश्चल मनवाला था; नीतिनिपुण, विनयी और आचार व्यवहारमें अतीव प्रवीण था। जब इसके विवाहका भी समय आया तब इसने रातके समय घरमें खूब रोशनी करवाई, और आप हाथमें चमचमाती हुई तलवारको लेकर उसी घरमें जा बैठा। थोड़ी देरमें उसे घरके एक किसी कोनेमें एक हाथ दीख पड़ा जो कि चूड़ियोंसे मण्डित एवं मनोहर था। मेरुने उसे देखते ही काट डाला, उस समय दयाभावसे बिल्कुल ही काम न लिया। बादमें

उस स्थानपर जाकर देखा तब उसे मालूम हुआ कि जिसका मैंने हाथ काट डाला है वह तो मेरी माता ही है, और भुजाहीन हो जानेसे बहुत दुःखी हो रही है । माताको देखकर वह सोचने लगा—

अहो कष्टमहो कष्ट-मंबा खादति यत्सुतान् ।
कोऽन्योऽस्तु शरणं तेषां, संसारे सारवर्जिते ॥

अर्थात्—बड़े भारी कष्टकी बात है कि जब इस असार संसारमें अपने पुत्र-पुत्रियोंको माता ही खा जातीं हैं, तब उनको यहाँ दूसरा कौन शरण—सहाई हो सकता है ।

इतना विचारकर वैराग्यको प्राप्त हुआ मेरु वहाँसे निकला और अपने पिता जयके पास पहुँचा, तथा उनसे आसुओंको बहातेर माताका सारा वृत्तान्त कह सुनाया । मेरुके मुखसे उसकी माता एवं अपनी स्त्रीके ऐसे दुष्कृत्यको सुन वे भी विरक्त हो गये । गृहावाससे विरक्त हुए वे दोनों घरसे निकल धर्मकी परीक्षा करनेमें दत्तचित्त उन्होंने बुद्ध आदिके बताए हुए धर्मोंकी खूब ही जाँच की और अन्तमें श्रीधर नामक मुनिको नमस्कार कर उनसे जैनेन्द्री दीक्षा ले ली और तपमें तल्लीन हो गये । राजन्! मैंने जय और मेरुका कथानक तो थोड़ासा आपको सुना दिया । इस प्रकार जय और मेरुका कथानक पूरा हुआ । अब मैं शुंदके कथानकको कहता हूँ सो तुम सावधान हो सुनो ।

इसी भरतक्षेत्रमें एक हस्तिनापुर नगर है, इस नगरके राजा शुंद थे। वे बहुत सुन्दर आकारवाले थे । और उसका कोई भी बैरी न था। उनकी रानीका नाम मदनावली था । वे भी बड़ी सुन्दरी थीं, कामदेवके धनुषकी डोरीके समान ही थीं; तन्वंगी—कृशांगी थीं । ऐसी

रानीके साथ कलालय महाराजा शुंद समय २ पर क्रीड़ा किया करते थे। एक समय रानीके साथ महाराज वनमें क्रीड़ा करनेको गये थे। वहाँ उन्होंने रानीको रातके समय एक बन्दरके साथ काम क्रीड़ा करते हुए देख लिया और क्रोधमें आ धनुषपर बाण चढ़ाकर उस बन्दरको मार डाला। अपने अभीष्ट फलकी वाञ्छासे उस दुष्टा रानीने कहा कि राजन्! इन बन्दरोंका चरित बड़ा दुष्ट होता है; इस लिये इस बन्दरको आप जला ही देवें तो अच्छा है। क्या आपने नहीं सुना कि इन लोगोंने रावणको मार डाला था? रानीके वचनोंको सुनकर राजाने श्रीखण्ड, अगरु आदि लकड़ियोंसे उसे जला दिया। इतनेमें रानी आई और उस बन्दरके स्नेहसे उसकी चितापर कूद पड़ी—दग्ध हो गई। यह देख शुंद बहुत विस्मित हुए। अतः वे जिनदत्त मुनिके पास गये और वहाँ उनके उपदेशसे धर्मको समझकर उनसे दीक्षा ले ली और तप करने लगे। इस प्रकार शुंदका कथानक पूरा हुआ। श्रीवर्द्धन मुनिराज, प्रभंजन राजासे कहते हैं कि हे अपराजित! सबुद्धे! कषायविजेता राजन्! अब आप अपराजित मुनिका कथानक सुनो।

इस भरतक्षेत्रमें एक कौशांबी पुरी है। इस पुरीके राजा बलाधिप थे। उनकी रानीका नाम जया था। उनके पुरोहितका नाम अपराजित था। वे द्विज थे, उनकी स्त्रीका नाम जयमाला और पुत्रका नाम पाल था। पालकी बहिनका नाम श्रीदेवी था जो कि मंत्र तंत्रकी सिद्धिमें बहुत चतुरा थी। उसकी मदनवेगा नामकी सखी थी, जिसके मनमें कामदेवका सतत वास रहता था। श्रीदेवीका विवाह राजगृहके जय-भद्रके साथ हुआ था। वहाँ उसने किसी चिलात (भील)से

यह उपदेश प्राप्त किया कि जो स्त्री निशंक हो अपने बच्चेको मारकर तथा मंत्रसे उसे मंत्रितकर खा लेती है, वह उसी समय आकाशमें चलने लग जाती है। जब श्रीदेवीके भाईने सुना कि श्रीदेवीके बालबच्चा होनेवाला है तब वह उसे लिबानेको राजगृह गया, और वहाँसे लिबाकर उसे मदनवेगा सखीके साथ २ लिये आ रहा था। मार्गमें विंध्याचल पर्वतके बीचमें उसने पुत्रको जन्म दिया और वह उसे मारकर खाकर सहसा आकाशमें चली गई। पालने उसका साराका सारा वृत्त जान लिया। वह बहुत दुःखी होता हुआ घर आया, और वहाँ उसने श्रीदेवीका सारा हाल माताको कह सुनाया। अपनी पुत्रीके चरितको जानकर क्रुद्ध हुई माता भी सामने खड़े हुए पुत्रसे बोली कि पुत्रके स्नेहसे रहिता, मलिन परिणामोंवाली वह दुष्टा संसारमें दुर्लभ ऐसे उपदेशको मुझे विना दिये ही चली गई। माताके ऐसे वचनोंको सुन, पालको बहुत शोक हुआ। वे बहुत भयभीत होकर पिताके पास गये और उनसे साराका सारा वृत्तान्त कह दिया। वे कहने लगे कि मेरी माता तो राक्षसीके सदृश है और बहिन साक्षात् राक्षसी ही है; इस लिये हे तात! उठो, यहाँसे चलें; इस जगह भारी दारुण भय है। बादमें संसारसे भयभीत हुए वे दोनों घरसे वनको चले गये। वहाँ वे महेन्द्र नामक मुनिको नमस्कार कर उनसे दीक्षा ले मुनि हो गये। इस प्रकार अपराजित और पालका कथानक पूरा हुआ।

हे राजाओंमें श्रेष्ठ राजन्! अब संसारसे उद्वेगको पैदा करनेवाले वज्रायुधके कथानकको सावधान होकर सुनो। इसी भरतक्षेत्रमें विशाला (उज्जैनी) नामकी एक नगरी है। इस नगरीके राजा

श्रीपाल थे । इनकी रानीका नाम मंगली था । उसके एक मंगिका नामकी पुत्री थी । श्रीपालके मंत्रीका नाम वज्रवेग था । जो कि सज्जनोंको बहुत प्रिय था । मंत्रीकी स्त्रीका नाम वज्रोदरी था । वज्रवेग और वज्रोदरीके पुत्रका नाम वज्रायुध था तथा उसको सहस्त्रभट और वज्रमुष्टि भी कहते थे । किसी समय राजा वज्रायुधके वीर्यको देखकर बहुत संन्तुष्ट हुए थे और उन्होंने अपनी कन्या (मंगिका) का विवाह उसके साथ कर दिया था । कुछ दिनोंके बाद वसंत ऋतु आई । तब राजा, मंत्री, जमाई, तथा और २ सामन्तोंको साथ लेकर क्रीड़ा करनेको वनमें गये । इसी बीचमें वज्रोदरीने एक गुंजा नामके सर्पको घड़ेमें रक्खा । वह बार २ अपनी लाल जिह्वाको फिर २ निकालता था, भारी भयानक था, बड़े विस्तारवाला और लम्बा चौड़ा था तथा उसी घड़ेमें, सुन्दर २ वस्त्र, दिव्य २ आभूषण, कर्पूर कुसुम और चंदन आदिका बना हुआ सुगन्धि-लेपन, तथा पुष्पोंकी गंधमय मालायें जो सुन्दर २ पुष्पोंसे बनाई गई थीं और मनोहर एवं उज्वल तारावलि—हारावलि आदि पदार्थ भी रक्खे ।

इन सबको लेकर मंगिकासे कहा कि शोभने ! आजकल वसन्तका समय है इस लिये तुम नये २ वस्त्र और आभूषण वगैरह पहिन_लो । अपनी सासूके इस प्रकारके कपटसे भरे हुए वचनोंको सुन विचारी मंगिकाको उसके कपटका कुछ भी भान न हुआ । वह शीघ्र ही अपने अच्छे भावोंसे उसके वचनोंका आदर करने लगी, और ज्यों ही उसने घड़ेके अन्दर अपना हाथ डाला त्यों ही घड़ेमें बैठे हुए सर्पने क्रुद्ध होकर उसके हाथको पकड़ लिया । उसके सारे

शरीरमें विष चढ़ गया। तब शरीर थर २ काँपने लगा। वह तन्वी जड़से उखाड़ दी गई, बेलके समान भूतलपर गिर पड़ी। सूरज अस्ताचलपर जा ही रहा था कि उसी समय मंगिकाको ले जाकर वज्रोदरी स्मशानभूमिमें वहाँपर रख आई जहाँपर एक यतीश्वर ध्यान लगाये हुए बैठे थे। इतनेमें वज्रायुध वनसे घर आया और अपनी प्रियाको न देखकर मातासे पूछने लगा। माताने कहा कि तुम्हारी वल्लभा मर गई है। यदि तुम्हें उससे कुछ कार्य हो तो जाओ वह स्मशानभूमिमें है। माताके मुखसे अपनी प्राणवल्लभाको मर गई जानकर वज्रमुष्टिको इतना भारी दुःख हुआ मानों उसे वज्रका ही घाव हो गया हो। वह सोचने लगा कि यदि मेरी प्रिया मर गई है तो मैं भी उसीके साथ मर जाऊँगा, और यदि वह जीती है तो मैं भी जीता रहूँगा; मेरी यही प्रतिज्ञा है। इस प्रकार दुःखी हो हाथमें तलवार लेकर घरसे निकल स्मशान-भूमिमें गया। जहाँ उसकी प्राणवल्लभा थी वहाँ उसने मानों साक्षात् धर्मध्यान ही बैठा है ऐसे नासाके अग्रभागपर दृष्टि लगाए बैठे हुए सर्वौषध नामक मुनिको तथा अपनी वल्लभा मंगिकाको भी देखा। मुनिको देखते ही वह विचारने लगा कि यदि मेरी वल्लभा जीवित हो जायगी तो मैं कमलोंकेद्वारा इन मुनिके चरण-कमलोंकी पूजा करूँगा। इस प्रकार विचार करता २ वह मंगिकाको मुनि महाराजके चरणोंके समीपमें ले आया। मुनिराजके समीपकी वायुके स्पर्शमात्रसे ही मंगिका सहसा विष-विकारसे रहित हो गई। तब वह अपनी प्यारीको तो उन मुनि महाराजके चरणकमलोंके समीपमें छोड़ गया और आप हर्षित होता हुआ शतपत्र कमल

लेनेको तालावपर चला गया। मथुरामें एक जीवन्धर नामक सेठ थे, उनकी भार्याका नाम जया था। जीवन्धर और जयाके सात पुत्र थे। उनके नाम विजय, वसुदत्त, सूर्य, चन्द्र, सुप्रभ, जयभद्र, जयमित्र इस प्रकार थे। वे सभी सातों व्यसनोंसे दुःखी थे, बहुलतासे वे चोरीसे नष्ट भ्रष्ट हुए थे और एकको छोड़कर शेष सब उज्जैनीमें आकर ठहरे हुए थे, तथा उनमेंसे एक उसी स्मशानभूमिमें बैठा था। उसे वहाँ बैठा देखकर मंगिका उसपर आसक्त हो गई और कामके बाणोंद्वारा वेधी जाने लगी। तब उसने चोरसे कहा कि मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ। चोरने उसके इन वचनोंको सुनकर लज्जित होते हुए कहा कि तुम्हारा पति सहस्रभट है; इस लिये मैं डरता हूँ। इसपर मंगिकाने कहा कि उसको तो मैं मार डालूँगी, तुम कुछ भी भय मत मानो। यह सुन चोरने अपने मनमें विचारा कि जो स्त्री अपने रूपशाली, यौवनशाली, और धनाढ्य पतिको भी मारनेके लिए तैयार है, वह दुष्टा मुझे क्या छोड़ेगी? इतनेमें सहस्रभट तालावपरसे कमलोंको लेकर आया और मुनिराजके चरणोंको पूजकर ज्यों ही नमस्कार करनेको नम्र हुआ त्यों ही मंगिकाने खींचकर जल्दीसे उसके गलेपर तलवार चलाना प्रारम्भ किया कि पीछेसे चोरने आकर तलवार पकड़ ली। बाद वज्रायुध तो मंगिकाको लिवाकर अपने घरको चला आया, और चोर धनको लेकर अपने भाइयोंके पास उज्जैनी चला गया। वहाँ उसके लाये हुए द्रव्यके उसके भाइयोंने सात हिस्से किये। उनको देखकर विरक्तधी भद्र नामक चोर बोला कि मुझे धनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं; मैं धन नहीं चाहता हूँ। तब उसके भाइयोंने पूछा कि हे

भ्रातः ! इसका कारण क्या है ? उसने स्मशानभूमिका सारा वृत्त कह सुनाया । तब वे सब भी वैराग्य भावको प्राप्त हुए और दीक्षा लेकर तप करने लग गये । किसी दूसरे दिन वे सभी धीरवीर चर्यामार्गके अनुसार आहार लेनेको निकले और क्रम २ से अन्य २ घरोंको छोड़ते हुए वे जब मंगिकाके घरके नज़दीक पहुँचे, तब मंगिकाके पति वज्रायुधने उन्हें पड़गाहा । जब वज्रायुधने उनसे उनके तपका कारण पूछा तब उन मुनिजनोंने आहारके बाद स्मशान-भूमिका सारा हाल कह सुनाया । वज्रायुधने जब वह हाल सुना तब वे विरक्त हो गये और दीक्षा लेकर तप करने लगे। इस प्रकार वज्रायुधका कथानक पूरा हुआ ।

हे राजन् ! नंद मुनिके तपका हेतु यशोधर महाराजका चरित है । यह सचेता पुरुषोंके चित्तको चुरानेमें समर्थ है—यह सज्जन पुरुषोंके चित्तको अपनी तरफ खींच सकता है।

हे आर्य ! तुमने इन आठ मुनियोंके, जो जगत द्वारा स्तूयमान हैं, व्रती हैं, चरित और नामोंको पूछा था उन सबका मैं व्याख्यान कर चुका । धर्म एवं मुनिधर्म संसारसे भयभीत कराकर वैराग्यको बढ़ानेवाला है; इस लिए कुशाग्रबुद्धि बुद्धिमानोंको उसका अवश्य श्रवण करना चाहिए और उसके अनुसार यथाशक्ति चलनेमें भी प्रयत्न रहना चाहिए। इस प्रकार प्रभंजन गुरुके चरितमें यशोधर चरितकी पीठिकाकी रचनामें चतुर्थ सर्ग पूरा हुआ ।

पाँचवाँ सर्ग ।

अनन्तर प्रभंजन राजाने श्रीवर्द्धन मुनिको नमस्कार कर पूछा कि भगवन्! शीलव्रत भंग करनेसे स्त्रियोंको कौनसे पापका बंध होता है? मुनिराजने कहा—भव्य! शीलके भंग करनेसे जीवोंको उस पापका बंध होता है, जिससे कि उन्हें संसार समुद्रमें पड़कर भारी यातना भोगनी पड़ती है। राजन्! शील कुलसे भी उत्तम है; क्योंकि विना शीलके कोई कुल, कुल ही नहीं कहला सकता है। शीलधारी नर-नारियोंकी देव भी आ-आकर पूजा करते हैं, चाहे वे किसी भी कुलके क्यों न हों; और जिसने उस शीलका मनद्वारा भी एक वार भंग कर दिया उसको असह्य और दुर्लंघ्य नरकोंके भारी २ दुःख सहने पड़ते हैं। राजन्! जो अपने शील-रत्नको खोकर पृथिवीतलपर विहार करता है, वह अवश्य ही छठी पृथिवी तकके दुःखोंका पात्र हो जाता है। नरकके दुःखोंका जैसा कुछ वर्णन जैनशास्त्रोंमें किया है उसीके अनुसार मैं कुछ वर्णन करता हूँ, तुम सावधान हो सुनो।

नरकके उत्पत्ति स्थान दो तरहके हैं—एक मिष्टपाकमुख अर्थात् तवा, कड़ाहीके मुँह सारखे। दूसरे ऊँटके मुँहके आकार। उनमें नारकी जब पैदा होते हैं, तब उनके पैर तो ऊपरको होते हैं, और मुख नीचेको। उनके तीव्र पापका उदय होता है; अतएव उन्हें भारी वेदना होती है, जिससे वे बहुत आतुर रहा करते हैं। वे ज्यों ही अपने शरीरको यथोचित पूर्णकर भूमिपर गिरते हैं, त्यों ही वहाँकी तीव्र उष्णताको न सह सकनेके कारण फिर ऊपरको

उछलते हैं, और आकर फिर भी उसी गर्मीमें गिरकर उसी तरहसे भुनते हैं, जिस तरह ताते लोहेके तबेपर डाला हुआ तिलीका दाना, पहले तो उछलता कूदता है, बाद उसी तबेपर गिरकर भुलस जाता है। नारकियोंके रूप भारी भयंकर-भयावने होते हैं, वे दुर्वर्णा होते हैं, क्रूर होते हैं, उनके शरीरसे भारी दूर्गन्धि निकला करती है, उनका हुंडक संस्थान—आकार—होता है, वे नपुंसक होते हैं। उनके वचन व्रजोपम होते हैं। एक नारकीको पैदा हुआ देखकर उसी समय दूसरे अधम नारकी विभंगाज्ञानसे पूर्व भवके वैरोंको जान २ कर उसे मारनेको चारों तरफसे दौड़ आते हैं। उनको दौड़े आये देखकर अन्य २ नारकी उन्हें भी मारनेको दौड़ते है, तथा मुद्गर, मूशल, शूल आदि हथियारोंसे मारते हैं, पर वहाँ उनकी कोई रक्षा नहीं करता—वे वहाँ अनाथ हैं। दूसरे आकर उनको भी मारते हैं, अग्निमें डालकर खूब मुर्मुर पकाते हैं—कड़ाहोंमें डालकर औट डालते हैं। विक्रियासे मनुष्यके आकार वज्रमय दीर्घ खंभे बनाते हैं और उन्हें अग्निसे खूब तपाकर फिर उनसे नारकियोंको चिपटा देते हैं। मानों अग्नि ही जल रही है, ऐसी गर्म शय्याओंको बनाकर उनपर खूब कीलें चुभा देते हैं। फिर उनपर नारकी, नारकियोंको लिटाते हैं। उस समय वे बहुत हाहाकार करते हैं, पर कोई भी उनकी रक्षा नहीं करता है। एक नारकी दूसरे नारकीके शरीरको बसूलेसे छीलछाल डालते हैं और ऊपरसे महा विषैली २ चीज़ोंका लेप कर फिर नमकसे सींच देते हैं। कई एक नारकियोंको तो दूसरे नारकी ज़मीन खोदकर गाड़ देते हैं और ऊपरसे मिट्टी पूर देते हैं। किन्हीं २ नारकियोंका

श्वासोच्छ्वास बिल्कुल रोक दिया जाता है जिससे बहुत दुःखी हो वे ज़मीनपर गिर जाते हैं। उस समय उन्हें बहुतसे कुत्ते, काक, बक, मृग, गवेधुक, सिंह, व्याघ्र, वृक, सर्प, सरभ, आखु, शूकर आदि पशुपक्षी आ-आकर चूँट २ कर खा जाते हैं। जिसका जल विषके समान है, ऐसी उग्र वैतरणी नदीमें अवगाहन करा देते हैं। वहाँ भी मत्स्य वग़ैरह जीव आ-आकर शरीरको खाने लग जाते हैं जिससे नारकियोंको भारी विकलता पैदा होती है तथा उस नदीके दुर्गंधित जलको पिला देते हैं, जिसके पीनेमात्रसे ही ऐसा दुःख होता है मानों प्राण ही निकले जा रहे हैं। इन दुःखोंको न सह सकनेके कारण वे नारकी भागते हैं और विश्रामकी इच्छासे पर्वतकी शिखरोंपर चढ़ जाते हैं। वहाँपर भी उन्हें सिंह, व्याघ्र, गीदड़ आदि पशु खानेको दौड़ते हैं, जिससे वे भारी विकल होते हैं। यदि वे वनमें चले जाते हैं तो वहाँ तलवार सारखे तीक्ष्ण वृक्षोंके पत्तोंसे पहिले तो शरीरके खण्ड २ होते हैं, दूसरे दंश आदिक आ-आकर शरीरको खाने लग जाते हैं। अधिक क्या कहें शील भंग करनेवाले जीवोंको इससे भी कहीं अधिक२ वेदनाएँ भोगनी पड़ती हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो नारकियोंको सुख दे सके, ऐसा न कोई नरकमें द्रव्य है, न क्षेत्र है, न स्वजन है, और न स्वभाव—अपना कोई परिणाम ही है।

इस प्रकार शीलको भंग करनेवाला जीव छठी पृथिवीमें बाईस सागरतक घोर दुःखोंको भोगकर वहाँसे निकलता है, और स्वयं-भूरमण समुद्रमें जाकर महामत्स्य उत्पन्न होता है। वहाँ भी दुःखोंसे संतप्त होता हुआ बड़े२ पापोंका अर्जन करता है, और वहाँसे निकल

तीव्रतर यातनावाले सातवें नरकमें जाता है। सातवें नरकमें भी पूर्वोक्त दुःखोंको तेतीस सागरतक भोगता है, और बाद वहाँसे निकलकर क्रूर परिणामी सिंह होता है । सिंह पर्यायमें भी अपने क्रूर भावोंसे पापोंको इकट्ठाकर मरता है, और उस धूमप्रभा नामक पाँचवीं पृथिवीमें जाकर नारकी होता है जहाँपर रहना बहुत दुःख-प्रद है । वहाँपर तीव्र दुःखोंको सहते २ जब सत्रह सागर पूरे कर लेता है, तब वहाँसे निकल उरग-सांप होकर फिर चौथी पृथिवीमें जाकर उत्पन्न होता है । वहाँपर भी अत्यन्त क्रूर भावोंसे—भारी दुःखोंसे दश सागर कालको पूरा करनेके बाद वहाँसे निकल पक्षी होता है । एवं मरकर फिर बालुकाप्रभा पृथिवीमें जन्म लेता है । वहाँ सात सागर पूरे कर मरता है और फिर सरीसृप जातिका सर्प पैदा होता है । ग्रन्थकार कहते हैं कि शीलभंगसे क्या २ दुःख नहीं होते ? सरीसृप अवस्थासे दुःखोंके साथ मरकर दूसरी पृथिवीमें जन्म लेता है । वहाँ तीन सागर आयुको भारी दुःखोंके साथ पूरा करता है और वहाँसे निकलकर असंज्ञी जीव होता है। वहाँसे भी मरणकर दुखोंकी खानिरूप पहिली पृथिवीमें जाता है, और वहाँ हज़ारों दुःखोंको भोगता है। वहाँसे निकलकर एक सागर कालतक नाना तिर्यञ्च योनियोंमें ही परिभ्रमण करता रहता है, कुत्ता होता है, कुत्तेसे फिर कुत्ती होता है, घूक, और आखू (चूहा) होता है । बरड़, जलकाक, शृगाल आदि नाना पशु पक्षियोंमें जन्म लेता है । इस प्रकार भ्रमण करता हुआ यह जीव शीलभंगके पापसे दुःसह २ दुःखोंको भोगता है। यदि किसी प्रकार मनुष्य भी हो जाता है तो कुणप, कुब्ज, वामन, अन्धा, गूँगा, दरिद्री

और परसेवी होता है तथा ऐसा होता है जो कोड़ोंसे पीटा जाता है और जंजीरोंसे जकड़ा जाता है। फिर भी हमेशा नीच २ कर्मोंको ही करता है। शीलको भंग करनेसे जिन्होंने दुःख पाया है ऐसे सद्व्रतनिष्ठा मंगिकाके सिवाय भवघोष आदिकी स्त्रियोंके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। इनको आदि लेकर दुःखोंकी सन्तानके वितानसे जिनका मन डरता है उन सज्जनोंको प्रयत्नके साथ शीलव्रतका पालन खूब करना चाहिए। यह शील मनुष्यका भूषण है, संयमका साधन है, इसके विना और २ कारणोंके होते हुए भी जीवको सुख नहीं मिल सकता—उनकी आपदा नहीं टल सकती। शीलके विना अच्छे कुल और रूप सम्पत्तिकी प्राप्ति नहीं होती, तथा सुन्दर पुत्र आदिकी प्राप्ति भी नहीं होती। इस प्रकार श्रीवर्द्धन मुनिके मुखचन्द्रसे झरे हुए धर्मामृतका पानकर प्रभंजन महाराज और उनके पुत्र सरल महाराज दोनों ही दिगम्बर हो गये और घोर तपस्या करने लगे। बाद वसुधातलपर विहार करते हुए ये शान्तचित्त महायोगीश्वर इस उज्जैनी नगरीमें आये हैं। इस प्रकार श्रीवर्द्धन मुनिराजने पूर्णभद्र राजाके दो प्रश्नोंका उत्तर देकर तीसरे प्रश्न (मेरा इनके ऊपर भारी स्नेह हो रहा है इसका कारण क्या है?) का उत्तर देना प्रारंभ किया।

भरतक्षेत्रमें वसंततिलकापुर नगर है। वहाँके राजा वसंततिलक थे, उनकी रानी वसंततिलका थी, जो कि सती थीं। उसी पुरमें एक कोदण्ड नामक ब्राह्मण था, उनकी वल्लभाका नाम कमला था तथा उनके श्री और सम्पत् नामकी दो मनोहारिणी पुत्रियाँ भी थीं। कुछ दिनोंमें जब कोदण्ड मर गया तब कमला ब्राह्मणी

जलके विना कमलिनीकी नाईं बहुत विकल हुई और स्वभावहीसे दरिद्रा वह पतिके वियोग होनेपर दूसरोंसे माँग २ कर अपनी पुत्रियोंका भरणपोषण करनेको उद्यत हुई। एक दिन श्रीने अपनी फूफी—पिताकी बड़ी बहिनको गाली दी, जिससे कि उसने श्रीको बहुत भर्त्सना कर घरसे निकाल दिया। वह नगरसे बाहर गई और वहाँ उद्यानमें उसने बैठे हुए एक दमधर नामक यतिको देखा। वह उनके पास गई और उनसे अपनी दरिद्रताके दूर करनेका साधन—उपाय पूछा। यतिने उसको अणुव्रत धारण करनेमें असमर्थ जानकर कहा कि हे सद्बुद्धे! मैं दरिद्रताके नष्ट होनेका कारण बताता हूँ तुम सावधान हो सुनो। श्रीपंचमीका उपवास करनेसे जीवोंको इष्ट फलकी प्राप्ति होती है, इस लिए तुम अपने मनको निराकुल करके पंचमीके व्रतको करो। उस पंचमीव्रतके फलको सर्वथा तो तीर्थंकर (सर्वज्ञ)के सिवाय दूसरा कोई नहीं कह सकता, पर मैं अपनी मतिके अनुसार कुछ हिस्सा कहता हूँ उसे हे वत्से! तुम स्थिर चित्त कर सुनो। पंचमीके दिन व्रत करनेसे बहुत लक्ष्मी मिलती है, महान् सुख होता है, खूब भोग सम्पत्ति प्राप्त होती है, उच्च कुल मिलता है, रूप-लावण्य मिलता है, महाशील और सन्तोष एवं महान् धैर्यकी प्राप्ति होती है, सुभगता, शुभ नाम, आरोग्य, चिरजीविता, निराकुलता और निष्पापताकी प्राप्ति होती है। पंचमीके व्रतके माहात्म्यसे कभी शोक नहीं होता, ताप और दुःख नहीं होता, संसार भरमें सबसे चढ़ी बढ़ी निर्लोभता प्राप्त होती है, और जो शरणमें आवे उसको अपनानेका भाव पैदा होता है। इस व्रतके माहात्म्यसे

आत्मा स्वार्थी नहीं बनता है। जो इस व्रतको करता है उसको इष्टका समागम और अनिष्टका वियोग तो सदा ही हुआ करता है। उसके स्वाभाविक प्रीति और स्वाभाविक ही गुणोंकी प्राप्ति होती है। वह आत्मा किसीके आधीन नहीं रहता—स्वतंत्र हो जाता है। इस व्रतके अनुष्ठायी आत्माको सुन्दर पुत्र और सुन्दरी पुत्रियोंकी प्राप्ति होती है। तथा उसको पुत्रकी वधू और जमाई एवं नाती, पोते और ननन्द वगैरह सभी मनोरम मिलते हैं, हंस कैसी गति, कोकिल कैसी मधुर वाणी और शुभ व्यापार तथा शुभ परिणामोंकी प्राप्ति होती है। निरन्तर धर्मात्मा और धर्मका समागम रहता है। रहनेको अच्छे२ महल मिलते हैं; सोनेको सुन्दर२ शय्यायें मिलती हैं, खानेको मान और पहिरनेको नाना भूषण मिलते हैं। अच्छी२ गंध, अच्छे२ आवास एवं अच्छे२ वस्त्र और विलेपन मिलते हैं। हाथी, घोड़े, रथ, यान, वाहन, पदाति आदि विभव भी सब सुखद ही प्राप्त होता है। इस व्रतके प्रभावसे पिच्छछत्र, इन्दुछत्र, चन्द्र, चमर वीजन (ढोरना) जंपान, शिविका और दोलायायित्व ये सभी लीलामात्रमें प्राप्त हो जाते हैं। जगत्के नेत्रोंको आनन्द दायित्व, संसार भरका स्वामित्व, सत्कीर्ति, सुवर्णके समान शरीरकी कान्ति और मंद २ चलना, दयाभाव, क्रोधराहित्य, अवंचकता, निर्लोभपन, गर्वराहित्य आदि सब बातें प्राप्त होती हैं। इस व्रतवालेको कभी आधि—मानसिक दुःख नहीं होता है, चन्द्रमाकी नाईं सुन्दर मुख मिलता है, तथा उसका आत्मा निर्मलताको प्राप्त होता है, न्यायसे कभी भी पीछे नहीं हटता। श्रुतस्कंधकी भक्तिसे चक्रवर्त्ती, बलदेव, नारायण, इन्द्र, अर्हन्त विद्याधर आदिके

योग्य सुखोंकी प्राप्ति होती है । इस पंचमीव्रतके उपवाससे जो कुछ भी अभीष्ट हो वह सभी सिद्धिको प्राप्त हो जाता है—हाथमें आ जाता है । अब और बढ़ाकर कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जिनेन्द्रदेवने पंचमीव्रतके तीन भेद बताए हैं—जघन्य, मध्यम, और उत्कृष्ट । जघन्यका काल पाँच माह, मध्यमका काल पाँच वर्ष, और उत्कृष्टका काल पाँच वर्ष और पाँच महीना है । इस प्रकार मुनिके वचनोंको सुनकर श्रीने जघन्य पंचमीव्रतको ग्रहण किया और हर्षित होती हुई अपने घरको चली आई । सच है कि इष्ट-लाभसे जीवोंको हर्ष होता ही है । वहाँ उसकी माता और बहिनने भी उसके कहे अनुसार व्रत ग्रहण कर लिया और तीनों ही सन्तुष्ट होती हुई भले प्रकार व्रतको करने लग गईं और मरणकर पंचमीव्रतके प्रभावसे मनुष्य गतिको प्राप्त हुईं । ग्रन्थ-कार कहते हैं कि जब पंचमीव्रतके प्रभावसे आप्तता (देवपना) भी प्राप्त हो जाता है तब मनुष्यगतिकी प्राप्ति होनेमें आर्य पुरुषोंको आश्चर्य नहीं करना चाहिए । मुनिराज कहते हैं कि कमलाका जीव प्रभंजन, श्रीका जीव सरल और संपत्का जीव तुम पूर्णभद्र हुए हो और जिसको श्रीने गाली दी थी वह सुभद्रा सम्पत्के स्नेहसे तुम्हारी बहिन होकर प्रभंजनकी पृथिवी नामकी प्रिया हुई और उसने पूर्व भवमें बैरके कारण पति और पुत्र दोनोंका विनाश किया । इस लिए पंडित पुरुषोंको कभी भी किसीसे बैर नहीं करना चाहिए । इस प्रकार श्रीवर्द्धन मुनिराजके मुखसे प्रभंजन आचार्यके चरितको सुनकर पूर्णभद्र महाराज और उनका पुत्र भानु दोनों ही दिगम्बर हो गये और तप करने लगे ।

इसके बाद शीलसे विभूषित, गुणरूपी रत्नोंके कोश, समतारूपी चन्द्रके लिए क्षीरसागरके तुल्य, षट्कायिक जीवोंके प्रतिपालक, पंच पापके सर्वथा त्यागी, जातरूप (नग्नरूप) के धारी, पंच समिति और तीन गुप्तिके पालनहारे, कोष्टबुद्धि आदि बुद्धिओंके स्वामी, श्रुतांबुधिके पारको प्राप्त, सर्व ऋद्धियोंसे युक्त, कुकथा आदिसे विरक्त, कोई पक्षोपवासी, कोई मासोपवासी, कोई चान्द्रायण व्रतधारी, कोई आचाम्लचारी, विमान मेरु पंक्ति आदि विधियोंके आलय, कारित अनुमित आदि पिंड़ आदिके त्यागी, इनको आदि लेकर और २ गुणोंसे भी युक्त वे सब मुनीश्वर नाना देशोंमें विहार करते २ अतिशय शोभाशाली पुरताल पर्वतके पास पहुँचे। इस पर्वतके कोटि पाषाणतुल्य, सुवर्णकी कसौटीके समान गौरवशाली, सफ़ेद सरसोंके समान निर्मल, मणियोंसे खचित, कूटपर श्रीवर्द्धन योगीश्वरने भले प्रकार अपने शरीरका त्याग कर दिया और आत्म बलधारी सोलहवें स्वर्गमें देवपदको प्राप्त हुए। जो रत्नत्रय मोक्ष सुखका दाता है, ज्ञानको दीप्त करनेवाला है, परमातिशय प्राप्त बोधिका सदन है, उस रत्नत्रयका आराधन कर तीन लोकद्वारा पूजे जानेवाले निर्मल तीर्थंकर नामकर्मको बाँधकर तथा उपशम भावको प्राप्त कर श्रीप्रभंजन गुरु भी सोलहवें अच्युत स्वर्गके सुखके भोक्ता हुए, एवं रत्नत्रय और तपकर युक्त, पूर्णभद्र यतींद्र भी निर्दोष गणधर संज्ञाके साधक नामकर्मको अपने तपद्वारा बाँधकर निर्दोष सोलहवें स्वर्गमें देव हुए। जगन्मान्य कामारि जंभाराति (इन्द्र) नमस्कृत, शान्तियुक्त शरीरवाले श्रीभानु, शुंद आदिके मुनि भी सरल सुंधाद्रि पर्वतके सुन्दर तलमें अपने शरीरको त्यागकर सबके सब स्वर्गके देवोंकी सुख सम्पत्तिको

प्राप्त हुए। समिद्ध–दीप्त–शुद्ध शरीरधारी, दिव्य अलंकार, दिव्य लेपन, दिव्य आहार, दिव्य गति, दिव्य माल्यगंध और दिव्य वस्त्रोंके धारी तथा जिनेन्द्रकी वन्दना स्तुतिके कर्ता, महान् गुणोंके भंडार, और संसारसे भीरु होकर भी नाना प्रकारके मनोहर आत्मीय भोगोंके भोक्ता वे सब मुनीश्वर हमारी आत्मलक्ष्मीकी पुष्टि करें और हमें हमेशा सुख देवें ।

इस प्रकार श्रीप्रभंजन गुरुके चरितमें यशोधर चरितकी पीठिकाकी रचनामें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

जैनग्रंथकार्यालय, ललितपुर (झाँसी)
की
बिल्कुल नवीन पुस्तकें।

(१) श्रीगिरनारमाहात्म्य (विधान)

श्रीगिरनार पर्वत परम पूजनीय सिद्ध क्षेत्र है, इसको जैनी मात्र अच्छी तरह जानते हैं। और इस की यात्रा करके अपना जन्म सफल करते है। परंतु अबतक इस बात की बड़ी त्रुटि थी कि ऐसे परम पूजनीय क्षेत्र की कोई उत्तम पूजा नहीं मिलती थी। जिससे जैसे भाव लगने चाहिये नहीं लगते थे। लेकिन आज बड़े हर्षके साथ जाहिर किया जाता है कि उक्त क्षेत्रका पूजन (विधान) छपकर तयार हो गया है। पुस्तक इतनी भक्ति पूर्ण है कि जिसको पढ़ते पढ़ते रोमांच हो आता है। कर्ता ने इस में जिनेन्द्र गुणों के वर्णन करने के साथ वैराग्य और जैन सिद्धान्त का भी खूब रहस्य दिया है। कविता ऐसी मनोहारिणी है कि पढ़ते २ तबियत नहीं हटती। कागज बहुत अच्छा लगाया गया है, जिल्द बंध पुस्तक है, न्योछावार मात्र ॥-) आने रखे हैं, जिस से हर एक कोई मंगा सके। प्रत्येक जैनी भाई को एक २ प्रति मंगाकर प्रति दिन अपने २ स्थान पर पूजन कर पुण्यबंध करना चाहिये।

---

[२] धनंजय नाममाला कोश।

यह कोश भी मानतुंगाचार्य के शिष्यवर श्रेष्ठि श्री धनंजयजी कृत है। इस में एक शब्द के अनेक अर्थ बतलाये गये हैं, बड़ा उपयोगी ग्रंथ है, प्रत्येक जैन शालाओं में पढ़ाने योग्य हैं। जो बालक इस ग्रंथ को कंठ कर लेता है, उसको संस्कृत के श्लोकों का अर्थ

करने में इस से बड़ी सहायता मिलती है। यह ग्रंथ पहिले एक बार छप गया था, फिर एक बार अभी मूल मात्र छपा था, परन्तु अनुक्रमणिका वगैरा की बहुत उस में त्रुटि रही थी। परन्तु अब के उन तमाम त्रुटियों को दूर कर यह संस्कार छपा है। अनुक्रमणिका, भाषार्थ शब्दों का लिंग ज्ञान, अनेकार्थ नाममाला, सब इसमें दिया गया है। प्रत्येक जैनी को मंगाकर अपने २ बालकों को पढ़ाना चाहिये। न्योछावर ।≥) आने हैं।

पार्श्वपुराण बचनिका–

(३) यह तेवीसवें तीर्थंकरका चरित है। यह पहले संस्कृतमें ही था। अब हमने इसको सरल हिन्दीमें लिखा है। इसकी कथा बड़ी ही रोचक है। इसको पढ़ते २ तृप्ति नहीं होती है। छप रहा है बहुत सुन्दर चिकने कागजपर छपके तैयार होगा। पहिलेसे ग्राहक बनजानेवालोंको पौनी कीमत की वी० पी० से भेजा जायगा।

(४) **परीक्षामुख**–यह न्यायमें प्रवेश करानेवाली पहिली ही पुस्तक है। इसमें सूत्रजीके "**प्रमाणनयैरधिगमः**" सूत्रका बहुत ही खुलासा अर्थ किया है। इसके मूलकर्ता श्रीस्वामी **माणिक्यनन्दि** आचार्य हैं। अनुवादक–श्री पं० घनश्यामदासजी, न्यायतीर्थ हैं। भाषा सरल व सुबोध। मूल्य ।=)

(५) **आप्तपरीक्षा**–इसमें सच्चे देवकी बड़ी ही खूबीके साथ परीक्षा की है। "**ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं हो सकता**" इसका न्यायकी प्रबल युक्तियोंसे खूब समर्थन किया है। इसके मूलकर्ता–**अष्टसहस्रीके** बनानेवाले स्वामी **विद्यानन्दि** आचार्य है। अनुवादक श्री पं० उमरावसिंहजी, सिद्धान्तशास्त्री हैं। भाषा सरल सबके समझने योग्य। मूल्य ।≠)

मिलनेका पता–

मैनेजर,–**जैनग्रन्थकार्यालय,**

ललितपुर (झाँसी)

जैनग्रन्थकार्यालय, ललितपुर (झाँसी) की खासकी छपाई हुई पुस्तकोंके मिलनेके पते—

(१) जैनग्रन्थकार्यालय, ललितपुर (झाँसी)

(२) जैनसाहित्यवर्द्धककार्यालय, ईंदोर कैंप

(३) बाबूराम जैन अत्तार, शिकोहाबाद ई० आई० आर०

(४) जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, गिरगाँव-बम्बई

(५) हिंदीजैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय, चंदावाड़ी-बम्बई

(६) दिगंबरजैनपुस्तकालय, चंदावाड़ी-सूरत